Chap-7

सप्तम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार : ---

उर्दू का एक प्रसिद्ध शेर है --''मैं अकेला था जानिबे मंज़िल मगर ; लोग और भी आते गये कारवां बनता गया।'' यह शेर कहा गया है, किसी और संदर्भ में, लेकिन ''शेर'' के अर्थ, संदर्भ और परिप्रेक्ष्य यदि एक ही रहें, तो वह ''शेर'' काहे का और कैसा ? अतः उसके संदर्भ को थोड़ा बदलकर हम उसे इस तरह लेते हैं कि जब मनुष्य संसार में आता है, वह अकेला होता है, किन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता है उसमें और भी लोग मिलते जाते हैं। उसका अनुभव संसार बड़ा, और बड़ा ,और बड़ा होता जाता है । जीवन और क्या है ? मनुष्य के सतत-निरंतर समझदार होते जाने की प्रक्रिया।

और इस प्रक्रिया में मनुष्य के साथ होती है कहानी- कहानी जीवन की। मनुष्य जब शिशु अवस्था में होता है , जब वह चल नहीं सकता, जब वह बोल नहीं सकता, हाथ-पैर इधर-उधर मारता है, इधर-उधर देखता है , ध्वनियों को पकड़ता है, तब उसका सरोकार स्थापित होता है ताल-

लय-संगीत-सुर से , लोरी के रूप में , गीतों के रूप में । उनके अर्थों को वह नहीं समझता, वह तो उनकी लयबद्धता में लीन होता जाता है । फिर वह थोड़ा बड़ा होता है , अपनी तुतली भाषा में कुछ-कुछ बोलने लगता है, कुछ-कुछ समझने लगता है, कुछ-कुछ चलने लगता है, तब उसकी ऊंगली थामने के लिए आ जाती है कहानी । कहानी के बिना मनुष्य को कब चला है ? शैशव से लेकर आखिर तक वह कहानी सुनना चाहता है, कहानी देखना चाहता है ।

कहा गया है : ''आदि मध्य और अंत में , मोदक भावे और । वे मोदक कछु और हैं, वे मोदक कछु और ।'' तो मनुष्य को कहानी-मोदक शुरू-शुरू में भाते हैं, यह बात और है कि वय और अवस्था के साथ उसके मोदक का स्वरूप बदलता रहता है । यह युग धारावाहिकों और फिल्मों का युग है, पर एक बात आज भी निर्विवादित रूप से कही जा सकती है कि वही धारावाहिक या फिल्म लोग पसंद करते हैं जिसकी कहानी में कुछ ''दम'' होता है । इसलिए तो कुछ अच्छे और समझदार कलाकार बिना कहानी सुने फिल्म ''साइन'' नहीं करते ।

एक और सूत्र भी है--''एकोऽहम बहुस्यामि ।'' अर्थात् मैं एक हूँ और अनेक होना चाहता हूँ । यह एक से अनेक होना, फिर अनेक से एक होने के लिए होता है । मनुष्य अपने अकेले जीवन में, चाहे वह यायावर ही क्यों न हों, जीवन के सभी कोनों को, जीवन के सभी रूपों को, उसके उजले-अंधियारे पक्षों को नहीं देख पाता , नहीं समझ पाता । कुछ तो छूट ही जाता है । जीवन को देखना आकाश को देखना है, समंदर को देखना है । जहाँ तक नज़र जायेगी, वहाँ तक ही तो देख सकते हैं । प्रत्येक मनुष्य का अपना एक समाज, अपना एक दायरा, अपना एक परिवेश होता है । उसका अनुभव-पिण्ड भी उसी चाक पर आकार लेता है । अतः हमारा अनुभव सीमित होता है, मनुष्य-विषयक हमारा ज्ञान सीमित होता है । इस ससीम को असीम तो नहीं बना सकते, पर उस दिशा में कुछ गति कर सकते हैं, और वहाँ पर हमारी सहायिका बनती है

कहानी।

प्राच्य काव्य-मीमांसा में साहित्य को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। हमारे यहाँ साहित्य और काव्य शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। पाश्चात्य काव्य-मीमांसा में ''काव्य'' की गणना ''कला'' के अंतर्गत की गई है, परंतु हमारे यहाँ काव्य को कला से बहुत ही ऊपर रखा गया है। काव्य का आनंद सामान्य कोटि का आनंद नहीं है। वह ब्रह्मानंद सहोदर है। काव्य से मनोविनोद तो होता है, पर केवल मनोविनोद या केवल मनोरंजन उसका उद्देश्य कभी नहीं रहा। मनुष्य के विकारों का विरेचन, और अच्छे विचारों का पल्लवन सदा से उसका काम्य रहा है। ''सत्य'' तो वह भी कहता है, परंतु उसका सत्य ''शिवम्'' और ''सुंदरम्'' से समन्वित होता है। इसीलिए हमारे यहाँ कवि को बहुत ऊंचा दरज्जा दिया गया है। उसे ब्रह्मा और ऋषि तक कहा गया है --

''अपारे काव्य -संसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मैरोचते विश्वम् तथैव परिवर्तते ॥''

सामान्य और रूढ़ अर्थों में केवल कविता का सृजन करने वाले को कवि कहा जाता है। परंतु ऊपर जिन अर्थों में ''कवि'' शब्द का प्रयोग हुआ है, वह उसके व्यापक अर्थ का बोध कराता है। इन अर्थों में प्रत्येक साहित्यकार कवि होता है। ब्रह्मा संसार की सृष्टि करते हैं। कवि भी अपनी एक दूसरी सृष्टि का निर्माण करता है। जो भी जीवन को लिखता है, चाहे गद्य में, चाहे पद्य में, वह कवि होता है। ''कवि'' शब्द का एक अर्थ वैद्य भी होता है। हमारी पुरानी परंपरा में वैद्य को लोग ''कविराज'' ही कहते थे। ''वैद्य तन के रोगों का इलाज करता है, कवि मन के रोगों का इलाज करता है।' और मन के रोगों का इलाज करने के लिए हमारे पास दूसरे लोगों के उदाहरण होने चाहिए। उन दूसरे लोगों के उदाहरण बिना हम केवल अपने-आप में सिमटकर रह जाते हैं, अपने आप में घुटकर रह जाते हैं। केवल उसी को दुनिया और संसार मान बैठते हैं और जो हमने देखा है, हमने भोगा है, हमने झेला या सहा

है, वही सबकुछ है, ऐसा मानने और समझने की भूल करते हैं। तब अपने वैयक्तिक सुख में हम ''छक'' जाते हैं घमंडी और अभिमानी हो जाते हैं और अपने वैयक्तिक दुःख से टूट जाते हैं, बिखर जाते हैं। ये दोनों स्थितियाँ भयंकर हैं। दोनों से मनोविकार पैदा होते हैं। पर जब हमारा ध्यान दूसरे लोगों के उदाहरणों पर जाता है, तब हमें अपने सुख और दुःख दोनों छोटे प्रतीत होते हैं। वास्तविक जीवन से हमारा आमना-सामना होता है। और ये उदाहरण हमें मिलते हैं कहानियों के माध्यम से। प्रत्येक अच्छी कहानी जीवन का एक चित्र प्रस्तुत करती है।

साहित्य का अनुराग तो प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के समय से था, परंतु साहित्य की सभी विधाओं में विशेष रूचि तो कहानी साहित्य की ओर ही रही है। हाईस्कूल के दिनों से प्रेमचंद मेरे प्रिय लेखक रहे हैं। प्रेमचंद की कहानियों में मानव-जीवन की धड़कनों को हम सुन सकते हैं। मानव-जीवन और विशेषतः उत्तर-भारतीय ग्रामीण जीवन के अद्भुत चितेरे हैं प्रेमचंद। भारतीय-जीवन की सही तस्वीर और तासीर प्रेमचंद की कहानियों में उपलब्ध होती है। विश्व-कहानी साहित्य में हम उनको मोपांसा और चेखव के समकक्ष रख सकते हैं। उनकी ''बड़े घर की बेटी'', ''नमक का दारोगा'', ''पंच-परमेश्वर'', ''ईदगाह'', ''मैकू'', ''बेटोंवाली विधवा'', ''ठाकुर का कुंआँ'', ''दो बैलों की कथा'', ''पूस की रात'', ''सद्गति'', ''सुजान भगत'', ''सवा सेर गेहूँ'', ''शतरंज के खिलाड़ी'', ''कफ़न'', आदि कहानियों को मैं बहुत पहले पढ़ चुकी थी। ऐसे में एक संयोग हुआ कि एम. ए. के दौरान राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित ''एक दुनिया समानांतर'' पढ़ने का मौका मिला। उसमें शैलेश मटियानी की कहानी ''प्रेतमुक्ति'' ने मुझे भीतर तक हिला दिया। इस कहानी के कारण मैं शैलेश की अन्य कहानियों को पढ़ने के लिए उत्सुक थी। उन दिनों में उनका एक कहानी संग्रह मुझे प्राप्त हुआ --''पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ'' इनमें संकलित ''पापमुक्ति'',

''नाबालिग'', ''कुसुमी'', ''गोपुली गफूरन'', ''संस्कार'' वगैरह कहानियों को पढ़कर मुझे प्रतीत हुआ कि जिस प्रकार प्रेमचंद की कहानियों में हमें मानव-जीवन की धड़कने सुनाई पड़ती हैं, ठीक उसी प्रकार की धड़कनें मटियानी जी की कहानियों में श्रुतिगत होती हैं। फिर तो मैं उनको और पढ़ती गई और अनुभव किया कि क्षुद्र से क्षुद्रतम वर्ग के लोगों के जीवन को यथार्थतः उद्घाटित करते हुए उनके जीवन के गहनतम अंधेरों में भी जो जो चेतना का प्रकाश-पुंज है उसे दिखा सकने की प्रतिभा और शक्ति इस लेखक में है। मटियानी जी हर हालत में पराजित मानवता के पक्षधर रहे हैं और सच्चे अर्थों में वाल्मीकि-धर्म का निर्वाह उन्होंने किया है।

अतः शोध के लिए मैंने हिन्दी कथा-साहित्य के इन दो दिग्गजों का वरण किया और ऊब महसूस कर रही हूँ कि ऐसा करके मैं मानवता के अनजान, अनचिह्नित, रहस्यमय गह्वरों को कुछ कुछ समझ पायी हूँ। अपनी वैयक्तिक रूचि के लिए साहित्य को पढ़ना एक बात है और शोध, अनुसंधान या गवेषणा हेतु उसे पढ़ना एक और ही बात हो जाती है। इसका अनुभव भी यहाँ हुआ। किन्तु एक बात असंदिग्ध रूप से कही जा सकती है कि शोध का विषय यदि मनोनुकूल हो तो शोध-पथ अधिक सुकर हो जाता है। मेरा संबंध दलित जातियों से है। अतः दलित जीवन को ही केन्द्र में रखकर अध्ययन करना अधिक समुचित होगा, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ और इस तरह मैं शोधाभिमुख हुई और आज यह कार्य संपन्न हुआ है।

यद्यपि कहानी तो मानव-जाति जितनी ही पुरानी है और प्राचनीकाल से उपलब्ध होती है, तथापि आधुनिक कहानी अपने वस्तु, शिल्प और उद्देश्य में उस प्राचीन कहानी से अलग पड़ती है। ''आगे क्या हुआ ?'' की जिज्ञासा तो आज भी बरकरार है, परंतु वह क्यों और कैसे हुआ, उसकी चिन्ता में भी आज का कहानीकार जाता है। प्राचीन कथा जहाँ केवल स्थूल कथावस्तु-प्रधान, मनोरंजन प्रधान, बोधप्रधान तथा

कथासूत्रों पर आधारित थी, वह आधुनिक कहानी अधिक सूक्ष्म, चरित्र-चित्रण-मूलक, परिवेश केन्द्रित और जीवन के वास्तविक प्राण-प्रश्नों से संपृक्त है। शोध-प्रबंध का प्रथम अध्याय "विषय-प्रवेश" का है, अतः उसमें आलोच्य विषय के अनुरूप कुछ सैद्धान्तिक और बुनियादी मुद्दों पर विचार-विमर्श का उपक्रम रहा है। यहाँ दलित-जीवन के तात्पर्य को समझाने का यत्न हुआ है। मुख्यतया दलित जीवन से तात्पर्य उन जातियों के जीवन से है जिनका सामाजिक, आर्थिक, नैतिक शोषण एक शोषणोन्मुखी सामाजिक व्यवस्था के तहत हुआ है। इन जातियों में विशेषतः अनुसूचित जातियों (Schedule Caste) और अनुसूचित जन जातियों (Schedule Tribes) को समाविष्ट किया जाता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का प्रत्यक्ष संबंध प्रेमचन्द तथा शैलेश मटियानी की उन कहानियों से है जिनका सरोकार दलित-जीवन से है। अतः पृष्ठभूमि के रूप में हिन्दी-कहानी के विकास को रेखांकित करते हुए उभय के कहानी साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके योगदान को स्पष्ट किया गया है। यहाँ बहुत संक्षेप में उपन्यास और कहानी के अंतर को भी चिह्नित किया गया है और उभय के तात्विक् अंतर को बताते हुए कहानीकार की दृष्टि को "अर्जुन-दृष्टि" और उपन्यासकार की दृष्टि को "भीम-दृष्टि" कहा गया है। हिन्दी कहानी का उद्भव तो बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हो गया था, किन्तु उसका समुचित विकास तो प्रेमचंद युग में ही हुआ। अतः यहाँ प्रेमचंदयुग से लेकर स्वातंत्र्योत्तर कहानी, नयी कहानी, समकालीन कहानी प्रभृति हिन्दी कहानी के विभिन्न सोपानों को निरूपित करते हुए, उनके विशिष्ट अभिलक्षणों को भी चिह्नित किया गया है। इसी अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचंद की लगभग २२४ कहानियों की सूची सन् १९०७ से लेकर सन् १९३७ (मृत्यु के उपरांत एक वर्ष) तक, उनके प्रकाशन-मास तथा पत्रिका के साथ दी गई है। यहाँ यह भी निरूपित किया गया है कि प्रेमचंद में हमें मुख्यतया मानवतावादी चेतना प्राप्त होती है। उनकी कहानियों में हमें नारी-विमर्श, दलित-विमर्श,

सामाजिक-न्याय-विमर्श तथा हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य विमर्श जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपलब्ध होते हैं। तत्कालीन समाज की अनेक सामाजिक-धार्मिक मुहिमों के संकेत भी इनकी कहानियों में हमें प्राप्त होते हैं। यहाँ स्पष्ट किया गया है कि प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को एक ऊंचाई पर पहुँचाया है जहाँ से हम विश्वविख्यात कहानीकार गोर्की, मोपांसा, चेखव जैसे मांधाता लेखकों के कृतित्व को झांक सकते हैं, इतना ही नहीं उन्होंने हिन्दी कहानी-साहित्य को एक नयी सौन्दर्य-दृष्टि भी प्रदान की है।

शैलेश मटियानी हमारे दूसरे विवेच्य कहानीकार हैं। प्रारंभ में हिन्दी कहानी के आलोचकों ने उनके कहानी-साहित्य को "आंचलिक-कहानी" के खाते में डाल दिया था, अतः उनके कृतित्व के साथ घोर अन्याय भी हुआ। परंतु जैसे-जैसे समय व्यतीत हो रहा है, उनका कृतित्व उभरकर आ रहा है और अब हिन्दी के अधिकांश कथा-विवेचक तथा लेखक उनको प्रेमचंद के कद का कहानीकार मानते हैं। हिन्दी कहानी के सुप्रसिद्ध कहानीकार मानते हैं। हिन्दी कहानी के सुप्रसिद्ध आलोचक राजेन्द्र यादव मटियानी जी के कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए उनके कहानी-कृतित्व को गोर्की, जैकलंदन और ज्यां जैने जैसे विश्व-प्रसिद्ध कहानीकारों के समकक्ष रखा है। (दृष्टव्य-हंस-जून : २००१) दलित-जीवन से सम्बद्ध उनकी जो कहानियाँ हैं उनमें विशुद्ध मानवीय स्पर्श और भावनाओं का आकलन हुआ है। प्रेमचन्द की कहानियों में जिन पक्षों का उद्घाटन नहीं हुआ है, जीवन के जो कोण और पक्ष अनाकलित रह गए हैं, उनका दिग्दर्शन शैलेश में उपलब्ध होता है।

हमारे शोध-प्रबंध का विषय है "प्रेमचंद तथा शैलेश मटियानी की कहानियों में निरूपित दलित-जीवन का चित्रण"। अतः द्वितीय अध्याय में दलित विमर्श से सम्बद्ध कतिपय मुद्दों को उठाया गया है। दलित जीवन के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए उनके विभिन्न वर्गों को यहाँ वर्गीकृत किया गया है। उनके विभिन्न वर्ग जैसे अछूत वर्ग, शिल्पकार वर्ग, जरायमपेशा वर्ग, आदिम जन-जातियाँ आदि को यहाँ निरूपित किया गया

है । अस्पृश्य जातियों पर धर्म और शास्त्र द्वारा आरोपित निर्योग्यताओं को भी यहाँ दर्शाया गया है । उन्नीसवीं-बीसवीं (बीसवीं का प्रारंभ) शताब्दी के भारतीय नवजागरण ने दलित-विमर्श को कैसे और किस हद तक सहायता पहुँचायी है यह भी यहाँ रेखांकित हुआ है । इसमें स्वामी विवेकानंद, गोपालराव हरि देशमुख, महात्मा ज्योतिबा फूले, आगरकर, लोकमान्य तिलक, अन्ना साहब, श्रीमंत महाराजा सयाजीराव गायकवाड़, महात्मा गाँधी, राजर्षि साहू महाराज, डॉ. बाबा साहब आंबेडकर, कर्मवीर भाउराव पाटिल आदि महानुभावों की भूमिका को स्पष्ट किया गया है । स्वतंत्रता के उपरांत दलितोत्थान की दिशा में जो कार्य हुआ है, उसे भी रखने का उपक्रम रहा है ।

इस शोध-प्रबंध में विशेष संदर्भ दलित-जीवन का है । अतः तृतीय अध्याय में प्रेमचंद की उन कहानियों को इस विशेष संदर्भ के साथ मूल्यांकित किया है जिनमें दलित-जीवन का चित्रण हुआ है । ऐसी कहानियों में ''ठाकुर का कुँआ'',''सौभाग्य के कोड़े'', ''मंदिर'', ''घासवाली'', ''सद्गति'', ''दूध का दाम'', ''लोकमत का सम्मान'', ''बाबा जी का भोग'', ''सवा सेर गेहूँ'', ''सभ्यता का रहस्य'', ''शूद्रा'', ''सती'', ''लांछन'', ''आगा-पीछा'', ''गुल्ली-डंडा'', ''देवी'', ''मेरी पहली रचना'',''बौड़म'', ''जुरमाना'', ''मंत्र'',''पूस की रात'',''कफ़न''आदि की परिगणना की जा सकती है । इन कहानियों में कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें दलित पात्रों के माध्यम से उनके जीवन की सामान्य समस्याओं को उकेरा गया है --जैसे आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न। इन कहानियों में घटनाओं के घात-प्रतिघात द्वारा ऊंची जातियों के पात्रों की तुलना में दलित पात्रों के गुणों को विश्लेषित किया है । यहाँ कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें अछूत समस्या के कतिपय महत्त्वपूर्ण मुद्दों को उठाया गया है । इन मुद्दों में मंदिर-प्रवेश, सामाजिक निर्योग्यताओं, सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह जैसे कुछ मुद्दे रहे हैं । यहाँ यह ध्यातव्य रहेगा कि ये वे मुद्दे हैं जो उस

कालखंड में भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के मुख्य और महत्त्वपूर्ण मुद्दे रहे हैं। यहाँ यह भी स्पष्ट हुआ है कि अछूतों की इस पशुवत जिन्दगी के लिए हमारी सामाजिक व्यवस्था (या अव्यवस्था ?) और शास्त्रानुमोदित वर्ण-व्यवस्था ही उत्तरदायी है। अतः उनको बदले बिना दलितों का उद्धार संभव नहीं है।

चतुर्थ अध्याय में प्रेमचंद की विवेच्य कहानियों को आधार बनाकर दलित-जीवन की जो समस्याएँ हैं उनको उकेरा गया है। इन समस्याओं में अस्पृश्यता की समस्या, मंदिर-प्रवेश की समस्या, आर्थिक समस्या, आर्थिक शोषण की समस्या, धार्मिक दृष्टया शोषण की समस्या, अत्याचार और अन्याय की समस्या, मानव-अस्मिता की समस्या, यौन-शोषण की समस्या, बेगार की समस्या, शैक्षिक समस्या, अंध-विश्वासों से उत्पन्न समस्याएँ, मनोवैज्ञानिक समस्याएँ, धर्मान्तरण की समस्या, अमानवीयता की समस्या, गंदगी की समस्या आदि को प्रेमचंद जी की कहानियों के माध्यम से उकेरा गया है।

पंचम अध्याय में दलित-जीवन पर आधृत मटियानी जी की कहानियों का विवेचन उसी आधार-विन्दु को केन्द्र में रखकर किया गया है। इन कहानियों में ''सतजुगिया आदमी'', ''धुधुतिया त्यौहार'', ''नंगा'', ''लीक'',''एक कॉप चाय दो खारी बिस्किट'',''चिथड़े'',''गरीबुल्ला'', ''दैट माय फादर बालजी'',''पत्थर'',''फर्क,बस इतना है'', ''बिठ्ठल'', ''चील'', ''प्यास'', ''इब्बूमलंग'', ''मिट्टी'', ''मैमूद'', ''भय'', ''रमतुल्ला'',''दो दुखों का एक सुख'', ''गोपुली गफूरन'', ''महाभोज'', ''प्रेतमुक्ति'', ''अहिंसा'',''हत्यारे'', ''भंवरे की जात'', ''बर्फ की चट्टानें'', ''कुसुमी'',' 'सावित्री'', ''चुनाव'', ''जिबूका'', ''लाटी'', ''हलाल'',''कपिला'',''भविष्य'', तथा ''इल्लेस्वामी'', आदि लगभग ३५ कहानियों को समाविष्ट किया गया है। यहाँ अध्याय के प्रारंभ में मटियानी जी की कहानी-विषयक अवधारणाओं को भी स्पष्ट किया गया है।

छठे अध्याय में उपर्युक्त कहानियों के आधार पर मटियानी जी की कहानियों में दलित-जीवन का जो चित्रण हुआ है उसके विभिन्न आयामों को रखा गया है। जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि निम्न और दलित जीवन का बड़ा ही गहरा, समीपवर्ती और अपरागत अनुभव मटियानी जी को है। उनका जीवन-संघर्ष यहाँ उनके लिए मानो वरदान सिद्ध हुआ है। इसी अध्याय में यह स्पष्ट किया गया है कि मटियानी जी की इन कहानियों में दलित-जीवन विषयक एक नया दृष्टिकोण प्राप्त होता है। इसमें तथाकथित रूढ़ दलित जातियों के अतिरिक्त एक ऐसा दलित वर्ग मिलता है जिसे वर्गीकृत करना मुश्किल है। उनकी कहानियों में जहाँ एक तरफ गुण्डों, बदमाशों, जेबकतरों, उठाईगीरों और जुआरियों का संसार मिलता है ; वहाँ दूसरी तरफ वेश्याओं, भिखारियों , कोढ़ियों, लूले-लंगड़ों, अपाहिजों का संसार और उनके यथार्थ का कडुआपन और तिक्तता के भी यहाँ दर्शन होते हैं। स्वयं भुक्तभोगी रहे होने के कारण उनकी अनेक कहानियों में ''अनाथ'' (कुमाऊं बोली में ''छोरमूल्या'') बच्चों की कथा-व्यथा का सटीक चित्रण हुआ है। उनकी कसक-वेदना और आंसू यहाँ मिलते हैं। स्त्री-वेश्यावृत्ति के साथ-साथ यहाँ पुरूष-वेश्यावृत्ति (मेल-प्रोस्टिट्युशन) के किस्से भी मिलते हैं। उनकी पहाड़ी परिवेश की कहानियों में दलित जीवन का जो चित्रण हुआ है, उसमें दलितों में इधर जो एक नयी चेतना उभर रही है उसे रेखांकित किया गया है। यहाँ पुरानी पीढ़ी के कुछ दलित मिलते हैं जो ब्राह्मण-पुरोहित-पंडित के मंत्र-तंत्र आदि के कारण उनसे भयभीत और आतंकित हैं। प्रेमचंद जी की भाँति मटियानी जी ने भी धर्म-परिवर्तन का मुद्दा उठाया है, परंतु उसके कारण कुछ अलग हैं। यहाँ आर्थिक दबाव उतने नहीं हैं, जितनी धार्मिक रूढ़िचुस्तता। इसे मटियानी जी के कहानीकार का एक सशक्त पक्ष ही कहना चाहिए कि यहाँ गहराते अंधकार के बीच भी प्रकाश की कुछ किरणें मानवीय मूल्यों के रूप में विद्यमान हैं। आस्था का यह सौंदर्य ही उनकी कहानियों का प्राणतत्व है।

अन्ततः यह शोध-प्रबंध सुधी समीक्षकों और विद्वज्जनों के सम्मुख है। इसमें हमने हिन्दी कहानी-साहित्य के दो दिग्गजों के कहानी साहित्य को एक विशेष आयाम के परिप्रेक्ष्य में रखा है। प्रेमचंद को लेकर तो काफी सारा काम हुआ है। परंतु अभी भी कुछ पक्ष अनाकलित है। उन पर काम हो सकता है। मटियानी जी के कहानी-साहित्य पर, उनके उपन्यास साहित्य पर नाना आयामों को लेकर शोध-कार्य की गुंजायश है। मैं अपनी शक्ति-सीमा से भलीभाँति अवगत हूँ। अतः अपनी अल्पज्ञता एवं क्षतियों के लिए प्रथमतः क्षमाप्रार्थी हूँ। विज्ञान और टेकनालोजी की भाँति साहित्यिक शोध का स्वर कभी भी निर्णयात्मक या निश्चयात्मक नहीं हो सकता, क्योंकि साहित्य और कला का क्षेत्र तो संभावनाओं का क्षेत्र होता है। यहाँ कुछ भी अपूर्व ऐसा नहीं होता। अतः ''वादे वादे जायते तत्वबोधा'' के न्याय के मेरे इस कार्य से हिन्दी आलोचना, दलित-विमर्श और शोध-गवेषणा के क्षेत्र को किंचित् भी गति मिलेगी तो मैं अपने इस सारस्वत-श्रम को सार्थक और कृतकृत्य समझूंगी। अंत में जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों के साथ विरमती हूँ --

''यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म-रंगस्थल है ;
है परंपरा लग रही यहाँ,
ठहरा जिसमें जितना बल है।''

: इति शुभम् :